शिक्षा और उपनिवेशवाद

मैकॉले और ऐलफ़िन्सटन की भूमिका

सतेंद्र कुमार

फ़रवरी, 2018 में उत्तर प्रदेश के लाखों छात्र यूपी (उत्तर प्रदेश) बोर्ड की हाई स्कूल तथा इंटरमीडिएट परीक्षाओं में शामिल नहीं हुए।[1] कारण था बोर्ड की परीक्षाओं के दौरान नक़ल पर प्रतिबंध। सरकार ने नक़ल की रोकथाम के लिए सख़्त क़दम उठाए तथा स्कूल-कॉलेजों को भी नक़ल रोकने के लिए कड़े निर्देश जारी किये। इस पर प्रतिक्रिया करते हुए छात्रों के एक बड़े समूह ने शिकायत की कि यदि स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाई ही नहीं होती तथा कक्षाएँ नियमित रूप से नहीं चलतीं, तो छात्र परीक्षाओं में बिना नक़ल कैसे पास हो सकते हैं। उनका कहना था कि सरकार को पहले अध्यापकों को कक्षाओं में भेजना चाहिए तथा बाद में नक़ल पर सख़्ती करनी चाहिए।[2] कुछ छात्रों ने तो यहाँ तक कह डाला कि अगर सरकार अपने कर्मचारियों की घूसखोरी तथा भ्रष्टाचार नहीं रोक सकती तो छात्रों के नक़ल करने पर प्रतिबंध लगाना नैतिक रूप से ग़लत है। राजकीय इंटर कॉलेज, इलाहाबाद के एक शिक्षक का कहना है कि, 'यह सब हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली का किया धरा है।' इस शिक्षक-मित्र का मानना है कि, 'यह सब मैकॉले की देन है। मैकॉले तथा अंग्रेज़ों द्वारा स्थापित शिक्षा को हम आज तक ढोये चले जा रहे हैं।' उन्होंने आगे कहा, 'वर्तमान शिक्षा प्रणाली ऐसी है कि इसमें न तो छात्र ही पढ़ने

---

[1] अमर उजाला, 'नक़ल कराते प्रिंसिपल गिरफ़्तार'; 18 फ़रवरी, 2018.

[2] फ़ेसबुक वीडियो, 5 मार्च, 2018.(https://www.facebook.com/satendra.kumar. 92167/videos/ 10156250055789306/)
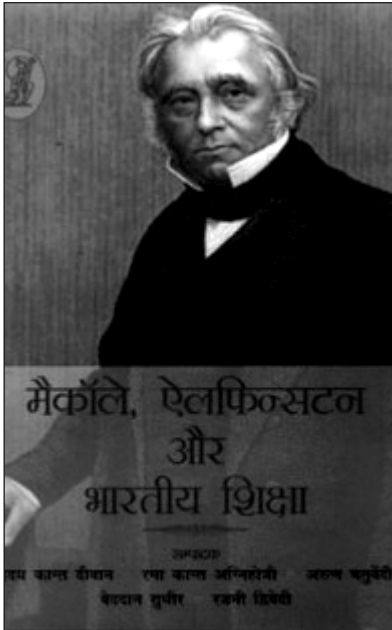
मैकॉले, ऐलफिन्सटन और भारतीय शिक्षा (2017)
हृदयकांत दीवान, रमाकांत अग्निहोत्री, अरुण चतुर्वेदी, वेददान सुधीर तथा रजनी द्विवेदी
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
मूल्य : 695 रु., पृष्ठ : 360

के लिए उत्सुक रहते हैं और न ही अध्यापक पढ़ाने के लिए। पठन-पाठन से संबंधित सारे निर्णय ऊपर से लादे जाते हैं।'[3] वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सारा ज़ोर परीक्षा पास करने पर और नौकरी पाने पर है। हालाँकि एक लम्बी बातचीत के दौरान उक्त शिक्षक-मित्र ने स्वीकारा कि उसने मैकॉले के बारे में अथवा उसकी नीतियों से संबंधित कुछ नहीं पढ़ा है। उसकी राय केवल सुने-सुनाए ज्ञान पर आधारित है। शायद यही स्थिति बहुत से अध्यापकों, नेताओं तथा शिक्षा से जुड़े लोगों के साथ भी है। समीक्ष्य रचना *मैकॉले, ऐलफ़िन्सटन और भारतीय शिक्षा* मैकॉले तथा उसकी शिक्षा नीतियों के बारे में व्याप्त इसी तरह की भ्रांतियों तथा कम-समझ को दूर करने का प्रयास है। यह पुस्तक *मूल प्रश्न* (उदयपुर से प्रकाशित) पत्रिका के 'मैकॉले और भारतीय शिक्षा विमर्श' के दो अंकों और अन्य आमंत्रित आलेखों का संग्रह है।

हृदयकांत दीवान, रमाकांत अग्निहोत्री, अरुण चतुर्वेदी, वेददान सुधीर तथा रजनी द्विवेदी द्वारा सम्पादित इस पुस्तक में प्रस्तावना के अलावा 19 अध्याय हैं। पुस्तक के अंत में माउंटस्टुअर्ट ऐलफ़िन्सटन की शिक्षा संबंधी टिप्पणी, थॉमस बैबिंग्टन मैकॉले की टिप्पणी, वुड का डिस्पैच आदि अनूदित दस्तावेज़ तथा सार्जेंट योजना पर जे.पी. नायक की टिप्पणी भी दी गयी है।

यह पुस्तक मैकॉले तथा ऐलफ़िन्सटन के शिक्षा संबंधी विचारों तथा नीतियों को भारत तथा ब्रिटेन की तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के आलोक में समझने का प्रयास करती है। विभिन्न अध्यायों में मैकॉले की पारिवारिक पृष्ठभूमि पर भी प्रकाश डाला गया है। लेखकों का मानना है कि मैकॉले पर अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक विचार धाराओं का गहरा प्रभाव पड़ा था। इसकी झलक उनकी शिक्षा संबंधी नीतियों पर साफ़ दिखाई देती है। इसके साथ-साथ किताब इस बात का भी खुलासा करती है कि मैकॉले के अलावा कई भारतीयों ने भी, जिसमें प्राच्यवादियों तथा आंग्लवादियों के अलावा कुछ राष्ट्रीय आंदोलन के नेता भी शामिल थे, अंग्रेज़ी शिक्षा एवं भाषा की श्रेष्ठता का पुरज़ोर समर्थन तथा प्रचार किया। यहाँ तक भी हुआ कि राजा राममोहन रॉय ने तो अंग्रेज़ी शिक्षा के समर्थन में 1823 में एक पत्र ही लिख दिया। इस तरह यह पुस्तक मैकॉले के व्यक्तित्व, उसके समय की राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों एवं उसकी शिक्षा संबंधी नीतियों को टुकड़ों में समझने के बजाय सम्पूर्णता में समझने पर ज़ोर देती है।

अक्सर मैकॉले और उसकी शिक्षा संबंधी नीतियों को भारतीय देशी शिक्षा तथा ज्ञान परम्पराओं के विध्वंसक तथा अंग्रेज़ी शिक्षा व्यवस्था के प्रवर्तक के रूप में देखा जाता है।[4] एक वर्ग का मानना है कि अंग्रेज़ों के पहले हमारे देश में बहुत सारे स्कूल थे जो अब नहीं रहे। इन सबको मैकॉले की

---

[3] अभिषेक यादव, अध्यापक, राजकीय इंटर कॉलेज इलाहाबाद के साथ बातचीत, 10 मार्च, 2018.
[4] धर्मपाल (2000).

नीतियों ने ही नष्ट किया। हालाँकि इस बात पर बहुत ग़ौर नहीं किया गया कि ब्रिटिश पूर्व शिक्षा का भारत में क्या स्वरूप था? अर्थात् ज़्यादातर बच्चों को पढ़ने का अवसर मंदिरों व मदरसों में ही मिलता था, और उस शिक्षा का एक बड़ा हिस्सा धर्म संबंधी जानकारी व कर्मकाण्ड के लिए था। 'ऐलफ़िन्सटन एवं मैकॉले के निहितार्थ' आलेख में रमाकांत अग्निहोत्री तथा हृदयकांत दीवान ऐलफ़िन्सटन तथा मैकॉले की शिक्षा नीतियों के माध्यम से तत्कालीन भारतीय शिक्षा के धार्मिक स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं। दोनों लेखक स्पष्ट रूप से कहते हैं कि ऐलफ़िन्सटन या मैकॉले के कुछ कथनों को संदर्भ से काट कर प्रस्तुत करने से हम उनके स्रोत व संदर्भ को भूल जाते हैं। उदाहरण के लिए ऐलफ़िन्सटन तथा मैकॉले के समय शिक्षा का एक बड़ा हिस्सा पुजारियों, ज्योतिषियों, फ़क़ीरों तथा मौलवियों के क़ब्ज़े में था। इसी कारण शिक्षा के लिए उपलब्ध धन राशि का काफ़ी बड़ा हिस्सा इन सबको धार्मिक पेंशन देने में जाता था। बकौल अग्निहोत्री एवं दीवान, इस आनुवांशिक शिक्षा तथा भत्ता व्यवस्था में न तो भत्ता पाने वालों को नया सीखने की कोई लालसा थी और न ही नया ज्ञान बनाने की। 'वे सब पुराने ज्ञान को दोहराने में मशगूल थे और नये विचारों व नयी समझ को विदेशी बता रहे थे।'[5] ऐलफ़िन्सटन का मानना था कि इस धन राशि का पुनर्वितरण होना चाहिए।

मैकॉले के दृष्टिकोण को तत्कालीन भारतीय उदारवादियों और सुधारवादियों का समर्थन प्राप्त था। ऐसे में जो भी मैकॉले ने किया उसे अन्य प्रशासकों के प्रयासों की एक कड़ी मानना चाहिए। यह सब एक बड़ी प्रक्रिया का हिस्सा था। हाँ, मैकॉले का यह अवश्य कहना था कि संस्कृत और अरबी में आधुनिक आवश्यकताओं के अनुकूल ज्ञान का विकास नहीं हुआ है। मैकॉले उस दौर में अंग्रेज़ी में उपलब्ध ज्ञान को भारतीय ज्ञान से बेहतर मानते थे।

अपनी 1824 की शिक्षा संबंधी टिप्पणी में ऐलफ़िन्सटन ने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया कि शिक्षा के क्षेत्र में सरकार को कोशिश करनी चाहिए कि निम्न वर्ग के अधिक से अधिक लोग पाठशाला में आयें और शिक्षा प्राप्त करें। इस आलेख में अग्निहोत्री तथा दीवान ने ज़ोर दिया है कि ऐलफ़िन्सटन शिक्षा को स्थानीय भाषाओं में देने के हामी थे। ऐलफ़िन्सटन ने साफ़ कहा कि स्थानीय भाषाओं में ज्ञान की रचना के लिए संसाधन जुटाना सरकार का ही काम है। उनका मानना था कि जो लोग अंग्रेज़ी माध्यम में पढ़ना चाहते है, उन्हें अंग्रेज़ी माध्यम से पढ़ने की सहूलियत मिलनी चाहिए। चूँकि उस समय आधुनिक ज्ञान-विज्ञान स्थानीय भाषाओं में कम ही उपलब्ध था।

इसी तर्क को आगे बढ़ाते हुए ऐलफ़िन्सटन ने सरकार को स्थानीय संस्थाओं एवं लोगों के साथ मिलजुल कर काम करने पर ज़ोर दिया। उनका कहना था कि दिन-प्रतिदिन हर स्कूल का रख-रखाव, पठन-पाठन एवं परीक्षा आदि का जिम्मा स्थानीय समुदाय को ही लेना चाहिए। यह सब सरकार के

[5] हृदयकांत दीवान और रमाकांत अग्निहोत्री (2017) : 45.

बस की बात नहीं है। इसके 11 साल बाद जब मैकॉले ने 1835 में शिक्षा पर अपनी टिप्पणी लिखी तो उनकी मंशा भी ऐलफ़िन्सटन की भाँति ही भारतीयों को शिक्षा रहित और पिछड़ा रखने की नहीं थी। ऐलफ़िन्सटन की तरह ही मैकॉले भी भारतीयों को उस आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से परिचित करवाना चाहते थे जिसके आधार पर वे दोनों और अन्य अंग्रेज़ खुद को भारतीयों से ज़्यादा उन्नत मानते थे। मैकॉले का साफ़ कहना था कि भारतीयों के लिए अंग्रेज़ी सीखना मुश्किल नहीं है। अंग्रेज़ी में शिक्षित वर्ग ही यहाँ की स्थानीय बोलियों को समृद्ध कर उनमें ज्ञान का विकास करेगा और इन भाषाओं में नया ज्ञान आ सकेगा।

अग्निहोत्री तथा दीवान इस लेख में मैकॉले के बारे में प्रचलित भ्रांतियों का ज़ोरदार खण्डन करते हैं। दोनों लेखकों का मानना है कि हमारी वर्तमान शिक्षा की दुर्दशा के लिए मैकॉले को दोष देना हमारी अपनी कमज़ोरी का ही बखान करना है। मैकॉले और ऐलफ़िन्सटन की नीतियों और वक्तव्यों में जिस तरह से स्थानीय ज्ञान को बढ़ाने का चिंतन दिखता है, उसके आधार पर उन्हें किसी साज़िश के लिए ज़िम्मेदार मानना एक़दम ग़लत है। दोनों ही अंग्रेज़ प्रशासक नये ज्ञान-विज्ञान, सार्वजनिक शिक्षा तथा शिक्षा के विकेंद्रीकरण के पक्षधर थे।

अपने दूसरे लेख 'भारतीय शिक्षा में ऐलफ़िन्सटन का दख़ल' में दीवान और अग्निहोत्री मैकॉले और ऐलफ़िन्सटन की भूमिका को प्रशासनिक दृष्टि से भी समझने पर ज़ोर देते हैं। ज़ाहिर है कि दोनों नौकरशाह कम्पनी के मुलाजिम थे और अपने काम को अंज़ाम दे रहे थे। वे अपने समय के मुख्य विचार-क्रम का ही प्रतिनिधित्व कर रहे थे। लेखकगण साफ़ तौर से बताते हैं कि मैकॉले और ऐलफ़िन्सटन की नीतियों में स्थानीय ज्ञान को आगे बढ़ाने का चिंतन दिखाई पड़ता है। लेकिन साथ ही दोनों लेखक ऐलफ़िन्सटन की उलझनों की तरफ़ भी इशारा करते हैं। वे मैकॉले से ऐलफ़िन्सटन के विचारों में फ़र्क़ को भी रेखांकित करते हैं। ऐलफ़िन्सटन एक तरफ़ तो स्थानीय लोगों और संस्थाओं के साथ काम करने का समर्थन करते हैं परंतु दूसरी तरफ़ उनके विवेक पर उन्हें संशय भी है। वे स्थानीय स्तर पर कार्यरत लोगों का तिरस्कार करते हुए उन्हें अविश्वसनीय व अज्ञानी बताते हैं। इस बात से लगता है कि उस समय के और आज के नौकरशाहों में शायद ही कोई अंतर हो। हालाँकि मैकॉले भारतीयों की क्षमता पर ज़्यादा विश्वास करते हुए प्रतीत होते हैं। इसका मतलब हरगिज़ यह नहीं है कि मैकॉले भारतीयों की दिल से इज़्ज़त करते थे । मैकॉले का मक़सद भारत पर अंग्रेज़ों का अक्षय राज स्थापित करना था। इस काम में अंग्रेज़ी शिक्षा एक अहम भूमिका अदा कर सकती थी।

दोनों लेखक बार-बार इस बात का खण्डन करते हैं कि मैकॉले को किसी बड़ी साज़िश का प्रणेता समझा जाना चाहिए। इस बात को आगे बढ़ाते हुए अपने तीसरे लेख 'मैकॉले की शिक्षा : एक विमर्श' में लेखकगण बताते हैं कि मैकॉले के दृष्टिकोण को तत्कालीन भारतीय उदारवादियों और सुधारवादियों का समर्थन प्राप्त था। ऐसे में जो भी मैकॉले ने किया उसे अन्य प्रशासकों के प्रयासों की एक कड़ी मानना चाहिए। यह सब एक बड़ी प्रक्रिया का हिस्सा था। हाँ, मैकॉले का यह अवश्य कहना था कि संस्कृत और अरबी में आधुनिक आवश्यकताओं के अनुकूल ज्ञान का विकास नहीं हुआ है। मैकॉले उस दौर में अंग्रेज़ी में उपलब्ध ज्ञान को भारतीय ज्ञान से बेहतर मानते थे। उनका इस बात पर बड़ा ज़ोर था कि नया ज्ञान-विज्ञान अधिक से अधिक लोगों को उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

इसी बात को आगे बढ़ाते हुए अपने लेख 'मैकॉले की शिक्षा : भारतीय मानस का द्वंद्व', में विश्वम्भर मानते हैं कि भले ही मैकॉले का मंतव्य अंग्रेज़ी शिक्षा के माध्यम से अंग्रेज़ी साम्राज्य के हितों को पूरा करना रहा हो, परंतु सिद्धांत के स्तर पर पहली बार भारत में उसी समय यह स्वीकार हुआ कि सभी को शिक्षा मिलनी चाहिए। सरकार को ऐसे स्कूल और कॉलेज चलाने में मदद करनी चाहिए कि जिसमें पढ़ने के लिए सभी आ सकें। सार्वजनिक शिक्षा की दिशा में यह एक बड़ा क़दम था। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सिद्धांत के तौर पर अंग्रेज़ों ने शिक्षा के दरवाज़े सबके लिए खोल दिये थे।

शरद चंद्र बेहर का आलेख 'शिक्षा नीति-निर्माता की खोज : मैकॉले के बहाने' मैकॉले के कार्यों तथा मंशा को उसके व्यक्तित्व के आधार पर समझने की वकालत करता है। बेहर कहते हैं कि मैकॉले के पिता व मैकॉले गुलामी व ग़ैर-बराबरी के नियमों के ख़िलाफ़ थे। मैकॉले समानता, न्याय और स्वतंत्रता के उदारतावादी और लोकतांत्रिक सिद्धांतों के पक्ष में थे। उसी के अनुसार उनकी राय व्यक्त होती थी तथा नीति-निर्धारण और शासन का संचालन होता था। एक अर्थ में मैकॉले ने ही सबसे पहले अनिवार्य व नि:शुल्क शिक्षा की शुरुआत की और उसके लिए संघर्ष शुरू किया। शिक्षा के संबंध में उनकी चर्चित टिप्पणी को इन्हीं मापदण्डों की कसौटी में कसना उचित होगा। बेहर के अनुसार मैकॉले पर लगे आरोप जायज़ नहीं हैं और उन्हें सम्पूर्णता में आँकने की ज़रूरत है। मैकॉले के बहाने शिक्षा के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियाँ छोड़ना उचित नहीं है।

बेहर साफ़ तौर पर लिखते हैं कि 'मैकॉले जहाँ एक ओर उदारतावाद से प्रेरित राजनीतिक और सामाजिक आदर्शों पर गहरा विश्वास करता था, वहीं उसका यह विश्वास भी था कि अंग्रेज़ी सभ्यता, साहित्य, संस्कृति और ज्ञान सर्वोत्तम है।' यही उसके मतों तथा कार्यों का आधार था। बेहर आगे कहते हैं कि 'इंग्लैण्ड के संबंध में भी मैकॉले स्वीकार करता है कि यदि रोमन साम्राज्य के जमाने में इंग्लैण्ड ने रोम और यूनान की शिक्षा व्यवस्था को स्वीकार न कर अपनी पुरातन भाषा और व्यवस्था को जारी रखा होता तो इंग्लैण्ड भी असभ्य रह जाता।' बेहर इस लेख के माध्यम से उन ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हैं जिनमें मैकॉले के व्यक्तित्व तथा विचारों का निर्माण हुआ और जिनसे उसकी शिक्षा संबंधी नीतियों को दिशा मिली। बेहर शिक्षा को सार्वजनिक तथा नि:शुल्क बनाने की शुरुआत के लिए संघर्ष को मैकॉले का बड़ा योगदान मानते हैं।

मैकॉले की पारिवारिक पृष्ठभूमि व इंग्लैण्ड में उसके कार्यों तथा उदारतावादी विचारों पर प्रकाश डालते हुए मदान अपने लेख, 'थॉमस बैबिंग्टन मैकॉले', में कहते हैं कि अपनी उदारतावादी विचारधारा के कारण मैकॉले भारत को विज्ञान, तर्क तथा मानवतावाद इत्यादि से परिचित करना चाहता था। मदान लिखते हैं कि अपने अनुभव से मैकॉले जान गया था कि भारत में एक वर्ग पैसे देकर अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करना चाहता है। जबकि अरबी और संस्कृत पढ़ने के लिए वज़ीफ़े देने पड़ते हैं। यह भी एक कारण था कि मैकॉले को अपना अंग्रेज़ी शिक्षा का विस्तार करने का विचार व रास्ता सही लगा। मदान कहते हैं कि यह एक कारण हो सकता है कि मैकॉले ने अपना चर्चित कथन 'ऐसे भारतीय जो स्वभाव में अंग्रेज़ होंगे', इसी परिप्रेक्ष्य में कहा हो। भारत के एक वर्ग में अंग्रेज़ी पढ़ने की ललक पैदा हो चुकी थी।

भारत के एक वर्ग में अंग्रेज़ी पढ़ने की ललक को उस समय की राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों के संदर्भ में देखना चाहिए। अपने लेख 'थॉमस बैबिंग्टन मैकॉले और भारतीय मध्यम वर्ग', में सी.एन. सुब्रह्मण्यम उन्नीसवीं सदी में फैलते ब्रिटिश साम्राज्यवाद व उसकी औपनिवेशिक नीतियों की तरह इशारा करते हैं। अंग्रेज़ी साम्राज्य का सूर्य कभी अस्त नहीं होता था। इसी के चलते स्वाभाविक था कि अंग्रेज़ी में उपलब्ध ज्ञान को सत्य तथा उपयोगी माना जाने लगा। सुब्रह्मण्यम लिखते हैं कि अंग्रेज़ी सरकार को लगने लगा कि भारत में फैली अज्ञानता तथा अंधविश्वासों को मिटाना उसका फ़र्ज़ है। उपनिवेशीकरण के लिए दो बातें ज़रूरी थी। एक, अंग्रेज़ी ज्ञान का वर्चस्व बनाना, एवं दूसरा स्थानीय संस्कृत व फ़ारसी में उपलब्ध ज्ञान को अज्ञानता की श्रेणी में धकेलना। भारतीय मध्यम वर्ग ने भी इसे बहुत जल्दी समझा और अपनाया। सुब्रह्मण्यम कहते हैं कि भारतीय मध्यम वर्ग ने अंग्रेज़ी के नये ज्ञान को अपने भविष्य तथा अच्छी नौकरियों से जोड़ा और संस्कृत तथा अरबी-फ़ारसी को धर्म तथा घरेलू मसलों से। मध्यम वर्ग ने बड़ी चालाकी से अंग्रेज़ी को अपना लिया। सुब्रह्मण्यम का मानना है कि उस समय तथा आज के मध्यमवर्गीय व्यवहार में कोई अंतर नहीं है। बेकार ही लोग मैकॉले को गाली देते हैं। राजा राम मोहन राय जैसे लोग और भारत का उस समय का मध्यम वर्ग अंग्रेज़ी शिक्षा तथा नये ज्ञान के लिए लालायित था।

कालूराम शर्मा भी अपने आलेख 'थॉमस बैबिंग्टन मैकॉले पर कैसे फ़तह पायें,' में मैकॉले के व्यक्तित्व के हवाले से बात करते हैं। कालूराम का मानना है कि मैकॉले खुला व्यक्ति था और बराबरी में विश्वास करता था। बकौल कालूराम मैकॉले को भारत में पुनर्जागरण व परिवर्तन की आवश्यकता महसूस होती थी। मैकॉले मानता था कि भारत के लोगों को तार्किकता सीखने तथा पुराने ढर्रे से निकलने की ज़रूरत है। साथ ही कालूराम का यह भी मानना है कि मैकॉले की योजना ऐसे भारतीयों को बनाने की थी जो अंग्रेज़ों की हाँ में हाँ मिलाएँ। नयी तालीम के सिलसिले में कालूराम कहते हैं कि वह विवेकशील, तर्कशील और वैकल्पिक दृष्टिकोण वाले नागरिक बना सकती थी। परंतु मैकॉले की शिक्षा भारत में गहरे पैठ गयी है। इसके कारण विकल्प में आयी सभी प्रणालियों तथा नयी तालीम को इसने ख़त्म कर दिया। मैकॉले की शिक्षा व्यवस्था ने हमारी रचनात्मकता को पूरी तरह विकसित नहीं होने दिया। भारतीय समाज अपनी जिन ज्ञान प्रणालियों के आधार पर अपनी भाषाओं में ज्ञानोत्पादन कर रहा था, वह प्रक्रिया अंग्रेज़ी शिक्षा के थोपने से लगभग बंद हो गयी।[6]

श्रीश चौधरी भी अपने लेख 'मैकॉले एवं आधुनिक शिक्षा पद्धति', में शरद चंद्र बेहर तथा अमन मदान के तर्क को आगे बढ़ाते हुए मैकॉले को उसकी तत्कालीन पृष्ठभूमि में समझने की कोशिश करते हैं। बैकौल चौधरी मैकॉले निम्न मध्यम वर्ग से थे। मैकॉले एक अच्छे विद्यार्थी थे तथा जेरेमी बेंथम के शिष्य थे। अपने दौर के प्रसिद्ध उदारतावादी चिंतक बेंथम का मैकॉले पर बड़ा प्रभाव था। श्रीश चौधरी कहते हैं कि मैकॉले के अलावा कई भारतीय भी अंग्रेज़ी शिक्षा को लागू करने के पक्ष में थे।

इसी क्रम में 'लॉर्ड मैकॉले की अंग्रेज़ी शिक्षा और भारत का विकास' में धर्मवीर चंदेल साफ़ तौर पर लिखते हैं कि अंग्रेज़ी शिक्षा ने भारतीय समाज के खुलेपन, आजादी व नवजागरण में मदद की है। यही नहीं, अंग्रेज़ी ने उत्तर व दक्षिण के बीच सम्पर्क भाषा का काम किया है। चंदेल का मानना है कि अंग्रेज़ी शिक्षा परिवर्तनकारी रही है। एक तरफ़ इसने सती प्रथा जैसी कुरीतियों के ख़िलाफ़ बहस खड़ी की है तो दूसरी तरफ़ इसने दलितों और पिछड़ों को ग़ैर-बराबरी के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ बुलंद करने की भाषा दी। चंदेल मानते हैं कि अंग्रेज़ी शिक्षा से निकले दलित व पिछड़े विचारकों ने इस विमर्श को तार्किक आधार व नेतृत्व भी दिया है। अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने भारत में बराबरी के लिए लड़ाई को विस्तार दिया है। अंग्रेज़ी शिक्षा के परिवर्तनकारी पक्ष की बात करते हुए वेददान सुधीर भी अपने लेख 'मैकॉले और भारतीय शिक्षा : एक विश्लेषण' में साफ़ तौर पर कहते हैं कि दलित तथा शूद्रों के लिए बराबरी का दर्जा नयी अंग्रेज़ी शिक्षा से ही निकलता है। वेददान कहते हैं कि भारतीय शिक्षा जिसे आश्रम, गुरुकुल तथा गुरु-शिष्य परम्परा से जोड़ा जाता है, वह मूलत: ब्राह्मणवादी है। वेददान ब्राह्मण संस्कृति को हारे हुए सम्राटों के गुणगान व वर्ग व्यवस्था के समर्थन के अलावा कुछ नहीं मानते। उनका कहना है कि हम चाहे मैकॉले को कितना भी दोष दें, फिर भी उसके योगदान को कम नहीं किया जा सकता। अंग्रेज़ी शिक्षा ने दलितों, पिछड़ों तथा स्त्रियों के लिए मुक्ति का मार्ग दिया है।

वरदराजन नारायण अपने लेख 'ओरियंटलिस्ट : एंग्लिसिस्ट बहस : समृद्धता की पड़ताल' में मैकॉले और उसकी नीतियों पर चली इस बहस के कुछ नये पक्षों पर प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि 1823 में जब कलकत्ता में संस्कृत कॉलेज स्थापित का प्रस्ताव आया तो राजा राम मोहन राय ने इसका स्वागत किया। परंतु उन्होंने साथ में यह भी कहा कि इससे भारत अंधकार में डूब जाएगा। राय ने भारत के लिए आधुनिक यूरोपीय विज्ञान, गणित, साहित्य एवं रसायन विज्ञान की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। राय के इस मत के कारण उनके कुछ समकालीनों ने उन्हें हिंदू समाज का विरोधी बताया। और इन सबने प्राच्यवादियों का समर्थन किया जो संस्कृत और फ़ारसी पढ़ने पर ज़ोर देते थे। जबकि

[6] इस पर विस्तार से चर्चा के लिए देखें, सुदीप्त कविराज (2005) : 119-142.

एंग्लिसिस्ट या आंग्लवादी प्रवृत्ति से जुड़े लोग अंग्रेज़ी शिक्षा के पक्षधर थे तथा उनका मानना था कि सरकार को अपना पैसा अंग्रेज़ी शिक्षा व पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान पर ख़र्चा करना चाहिए। वरदराजन प्राच्यवादी तथा आंग्लवादी की आपसी बहस के माध्यम से मैकॉले के 1835 की ऐतिहासिक टिप्पणी को समझने का प्रयास करते हैं। वे इस बहस की जटिलता तथा इसकी बहुपक्षीयता को बताते हुए साफ़ करते हैं कि मैकॉले की नीतियों को उन परिस्थितियों में समझना चाहिए। प्राच्यवादी बनाम आंग्लवादी बहस से साफ़ हो जाता है कि मामला केवल हिंदू धर्म व सभ्यता बनाम यूरोपीय ज्ञान का नहीं था। इसके कई पक्ष थे। इस सारी बहस में ईसाई पादरियों के स्वार्थ, जिसमें धर्मांतरण शामिल था, की भी बड़ी भूमिका थी।

मनीष जैन का लेख भी मैकॉले की नीतियों पर उपनिवेशवाद और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भारतीय संस्कृति में रुचि और बाद में इसको आंग्लवादियों द्वारा चुनौती दिये जाने से उभरी जटिलताओं पर प्रकाश डालता है। अपने लेख 'उपनिवेशवाद, औपनिवेशिक शिक्षा और मैकॉले' में मनीष ने इसके ऐतिहासिक पक्ष को मुखर किया है। मनीष जैन कहते हैं कि भारत में उपनिवेशवाद का अर्थ, रूप, उद्देश्य व कार्य प्रणाली हमेशा एक जैसे नहीं रहे हैं। बल्कि इस पर इंग्लैण्ड में होने वाले परिवर्तनों, भारत के विभिन्न समूहों तथा कम्पनी की विभिन्न हिस्सों में पहुँच इत्यादि की उपर्युक्त बातों को परिभाषित करने में कुछ-न-कुछ भूमिका थी। मनीष के अनुसार शुरुआती दौर में जब कम्पनी अपनी जड़ें फैला रही थी तब उसने भारतीय संस्कृति में बड़ी रुचि दिखायी। संस्कृत, अरबी तथा फ़ारसी में ज्ञान को बढ़ावा देने हेतु मदरसे व संस्कृत कॉलेज खोले गये तथा अंग्रेज़ी ज्ञान का विरोध किया गया। लेकिन बाद में आंग्लवादी विचारधारा के लोगों ने इस प्राच्यवादी दृष्टिकोण को चुनौती दी। आंग्लवादी विचारधारा में भारतीय भी शामिल थे। इसलिए मामला पेचीदा हो जाता है तथा सीधे-सीधे यह अंग्रेज़ी शिक्षा बनाम भारतीय संस्कृति तथा धर्म की लड़ाई नहीं रह जाती, और न ही मैकॉले अकेला सारी शिक्षा व्यवस्था को निर्धारित करने वाला। अपितु बात यह निकल कर आती है कि परिस्थितियों तथा विभिन्न मतमतांतरों की बहस के चलते मैकॉले ने अपना प्रतिवेदन तैयार किया।

ऐलफ़िन्सटन एक तरफ़ तो स्थानीय लोगों और संस्थाओं के साथ काम करने का समर्थन करते हैं परंतु दूसरी तरफ़ उनके विवेक पर उन्हें संशय भी है। वे स्थानीय स्तर पर कार्यरत लोगों का तिरस्कार करते हुए उन्हें अविश्वसनीय व अज्ञानी बताते हैं। इस बात से लगता है कि उस समय के और आज के नौकरशाहों में शायद ही कोई अंतर हो।

हिंदी भाषा के बारे में बात करते हुए अपूर्वानंद अपने लेख 'मैकॉले बाधा और हिंदी' में कहते हैं कि भारतीय शिक्षा तथा भारतीय भाषाओं की दुर्दशा के लिए 1935 के मैकॉले की टिप्पणी को ज़िम्मेदार माना जाता है। हिंदी भाषा के माध्यम से भारतीय भाषाओं की स्थिति पर विचार करते हुए अपूर्वानंद लिखते हैं कि हिंदी का जन्म मैकॉले के गुज़र जाने के बाद हुआ। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौर में हिंदी का विकास हुआ और हिंदी राष्ट्रीय भावना के साथ जुड़ गयी। लेकिन अभी भी यह पता लगाना आवश्यक है कि इस दौर में साहित्य के अलावा ज्ञान के अन्य क्षेत्रों जैसे विज्ञान तथा समाज-विज्ञानों में हिंदी का प्रयोग कितना हुआ। जब लोग हिंदी को एक बड़ी आबादी की भाषा

बताते हैं तो भूल जाते हैं कि जिसे हिंदी क्षेत्र तथा आबादी कहते हैं, वहाँ ब्रज, भोजपुरी, मैथिली तथा बुंदेली जैसी अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। अपूर्वानंद हिंदी की साम्राज्यवादी नीयत पर इशारा करते हुए कहते हैं कि हिंदीवादी मन ही मन हिंदी क्षेत्र में बोली जाने वाली इन सभी भाषाओं की मृत्यु की कामना करते हैं। इस कामना का एक तार राजकीय संसाधनों पर एकाधिकार के सवाल से भी जुड़ा है।

अपूर्वानंद का मानना है कि हिंदी की दावेदारी तब तक मजबूत नहीं होगी जब तक उसमें ज्ञान-विज्ञान का सृजन नहीं होगा। कृषि, विज्ञान और सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में हिंदी अभी सृजन की भाषा नहीं बन पायी। जब तक हिंदी में ज्ञान-सृजन की परम्परा आरम्भ नहीं होगी तब तक हिंदी मैकॉले की बाधा दूर नहीं कर पाएगी। अपूर्वानंद की बात इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि यह हिंदी के माध्यम से भारतीय भाषाओं में ज्ञान-सृजन की ज़रूरत को रेखांकित करती है। भारत की एक बड़ी आबादी ज्ञान-सृजन की प्रक्रिया से लगभग बाहर ही रही है।

मैकॉले को भारतीय शिक्षा की बर्बादी और सब समस्याओं की जड़ मानने वालों का एक पूरा समूह है। इस पुस्तक में अनिल सद्गोपाल, दयाल चंद्र सोनी, सुधा चौधरी तथा नंद चतुर्वेदी के लेख मैकॉले के कारण शिक्षा की दुर्दशा तथा बढ़ती असमानताओं की तरफ़ इशारा करते हैं। सद्गोपाल ने अपने लेख 'मैकॉले बनाम फुले-गाँधी-आम्बेडकर का मुक्तिदायी शैक्षिक विमर्श' में शिक्षा की सारी बुराइयों तथा समाज के पिछड़ेपन के लिए मैकॉले व मैकॉलेवादियों को ज़िम्मेदार मानते हैं। इनके अनुसार मैकॉले ने ऐसी चाल चली कि हम आज तक उसी का अनुसरण कर रहे हैं। सद्गोपाल का मानना है कि मैकॉले ने बड़ी चालाकी तथा दूरंदेशी से भारत की सभी भाषाओं को बोलियों का दर्जा दे दिया। उसने घोषित किया भारतीय भाषाओं में कोई गम्भीर साहित्य या विज्ञान नहीं है। अंग्रेज़ी विकसित भाषा है, इसलिए उसी में शिक्षा होनी चाहिए।

मैकॉले की दूसरी बात और भी घातक रही है। उसका मानना था कि यदि एशिया, भारत व अरबी साहित्य की ज्ञान-विज्ञान की सभी पुस्तकों को एकत्रित कर लिया जाए तो भी यूरोपीय साहित्य का केवल एक शैल्फ़ उनसे ज़्यादा उपयोगी होगा। तीसरी बात यह कि नौकरी के लिए अंग्रेज़ी आवश्यक है। चौथी बात— मैकॉले ने साफ़ कहा कि सभी भारतीयों को शिक्षा देने के लिए सरकार के पास पैसा नहीं है। सद्गोपाल कहते हैं कि आज भी हमारी सरकारों का तर्क यही है। हमने शिक्षा के 'परिवर्तनकारी' स्वरूप को छोड़ कर 'सामाजिक पुनरुत्पादन' वाले रूप को अपनाया तथा बढ़ाया है। सदगोपाल लिखते हैं कि मज़ेदार बात यह है कि 1835 के आस-पास जो शैक्षिक व्यवस्था हमने ऑक्सफ़र्ड व केम्ब्रिज से उधार ली वही आज तक हमारे देश में चली आ रही है। हालाँकि यूरोपीय विश्वविद्यालय स्वयं उस शिक्षा को बहुत पहले छोड़ कर अपनी शिक्षा का पुनर्गठन कर चुके हैं।

दयाल चंद्र सोनी भी अपने लेख 'यह मैकॉलेवादी शिक्षा और वह गाँधीवादी शिक्षा : यह क्यों नहीं छूटी और वह क्यों नहीं चली' में औपनिवेशिक दौर में लागू मैकॉले की शिक्षा का मूल्यांकन करते हुए वर्तमान भारत में चल रही शिक्षा को मैकॉलेवादी कहते हैं। सोनी गाँधी की बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धांतों, चरित्र निर्माण व स्वावलम्बन को उद्धृत करते हुए इसे मुक्तिकामी बताते हैं। इसके बरअक्स वे मैकॉले की अंग्रेज़ीवादी शिक्षा को ग़ैर बराबरी एवं शोषण को बढ़ावा देने वाली शिक्षा मानते हैं। बकौल सोनी मैकॉलेवादी शिक्षा शारीरिक श्रम के प्रति ग्लानि पैदा करती है। वह एक ऐसा वर्ग पैदा करती है जो शारीरिक श्रम करने वालों को हेय दृष्टि से देखता है। यह शिक्षा अभिजात वर्ग का निर्माण करती है। सोनी मातृभाषा का भी सवाल उठाते हैं। बुनियादी शिक्षा का मैकॉले की शिक्षा से अंतर करते हुए सोनी कहते हैं कि मैकॉलेवादी शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी है। इसका लक्ष्य ही अपनी भाषा व सांस्कृतिक विरासत के प्रति हीनता का बोध पैदा करना है। हमारी मातृभाषा में हमारी दुनिया बसती है। मातृभाषा में हमारी संस्कृति का संसार बनता है और उसमें हमारी संस्कृति का अनमोल ख़ज़ाना रहता है। मातृभाषा से कटना, संस्कृति और उसके सारे स्रोतों से कटना है। मातृभाषा से शिक्षा

को अलग करने का मतलब है कि छात्र को अपनी नैसर्गिक अभिव्यक्ति से अलग करना। सोनी एक बड़ा सवाल खड़ा करते हैं कि मैकॉले ने तो अंग्रेज़ी शिक्षा को बढ़ावा अपने जातीय साम्राज्य के लाभ के लिए किया था। 'लेकिन आज़ाद भारत में यह अपराध क्यों जारी है?' सोनी का मानना है कि, 'यदि शिक्षा नीति में वर्ग भेद एवं शोषणवाद का संरक्षण जारी रहे तो समाज को वर्ग भेद, भ्रष्टाचार, शोषण तथा नैतिक पतन से बचाया नहीं जा सकता।'

शिक्षा के सवाल को शिक्षा के माध्यम से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इस दृष्टि से नंद चतुर्वेदी अपने आलेख, 'अंग्रेज़ी का आतंक' में गाँधी तथा लोहिया के विचारों के माध्यम से अंग्रेज़ी राज और अंग्रेज़ी भाषा के बीच संबंधों पर प्रकाश डालते हैं। उनका मानना है कि मैकॉले भारतीय शिक्षा पद्धति और भारतीय भाषाओं को नये ज्ञान की भाषा नहीं मानते थे। नंद गाँधी के हवाले से मैकॉले की साज़िश तथा अंग्रेज़ी के माध्यम से भारतीयों को गुलामी में डालने की बात कहते है। गाँधी ने राष्ट्रीय निर्माण के लिए अंग्रेज़ी के आतंक से मुक्ति की बात की थी। आज भी लगातार बढ़ते अंग्रेज़ी के वर्चस्व से नंद चतुर्वेदी चिंतित है।

इसी बहस के दूसरे पक्ष को आगे बढ़ाते हुए सुधा चौधरी अपने आलेख 'मैकॉले बनाम भारतीय शिक्षा' में मैकॉले और अंग्रेज़ी शिक्षा पर दासत्व, साम्रज्यवादी हितों की पोषक और रंग रूप में भारतीय परंतु रुचियों, विचारों, नैतिक, तथा आदर्शों में अंग्रेज़ी लोग तैयार करने का आरोप लगाती है। सुधा चौधरी इस बहस को जटिल बनाते हुए पूछती हैं कि यदि मैकॉले की शिक्षा ख़राब है तो क्या प्राचीन भारतीय शिक्षा जनाभिमुख तथा जनपक्षधर थी? चौधरी प्राचीन भारतीय शिक्षा को ब्राह्मणवाद का पोषक मानती हैं। इनका कहना है भारतीय शिक्षा वर्णाश्रम सामाजिक व्यवस्था की उत्पाद थी। यह शिक्षा जीवन-दृष्टि यथास्थितिवाद का मार्ग प्रशस्त करती थी। सुधा का मानना है कि इससे बेहतर तो मैकॉले की ही शिक्षा है जो समानता, स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता जैसे जनतांत्रिक यथार्थ को तैयार करने वाली है।

इस पुस्तक के सारे लेखकों को मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। एक समूह मैकॉले को सीधे-सीधे दोषी मानने वालों का तथा दूसरा मैकॉले को दोषी न मानने वालों का। तीसरे तरह के लेखकगण वे हैं जो मैकॉले की शिक्षा नीतियों का विश्लेषण मैकॉले को उसके अपने संदर्भ में रख कर करते हैं। हर पक्ष के अध्येताओं के अपने-अपने तर्क हैं और सभी अपनी-अपनी कमियों के साथ ठीक प्रतीत होते हैं। लेकिन सारे लेख एक साथ मिल कर मैकॉले की टिप्पणी पर एक गम्भीर बहस खड़ी करते हुए इसके विभिन्न पहलुओं को बारीकी से सम्पूर्णता में समझने की वकालत करते हैं। इनके पाठ से पता चलता है कि यह मामला बड़ा उलझा हुआ है। विकास गुप्ता अपने लेख 'मैकॉले और उसके वाद : ऐतिहासिक लेखन पर मनन', में इसी उलझन को सुलझाने की कोशिश करते हैं। विकास ऐतिहासिक संदर्भों के आधार पर मैकॉले पर और अध्ययन की सम्भावनाएँ तलाशते हैं।

विकास अपने ऐतिहासिक विश्लेषण के ज़रिये से कहते हैं कि यह मामला सरल नहीं है। प्रत्येक दृष्टिकोण के कम से कम कुछ पहलू तो ठीक ही हैं, फ़र्क़ उन्हें देखने के नज़रिये का है। विकास का मानना है भारत में आधुनिक अथवा उपनिवेशक शिक्षा के बढ़ने को एक प्रक्रिया के रूप में पहचान कर उस समय के औपनिवेशिक संदर्भ में समझने की ज़रूरत है। इस प्रक्रिया को कुछेक औपनिवेशिक अफ़सरों के निर्णयों के नतीजों के रूप में नहीं देखना चाहिए। कुल मिला कर यह कह सकते हैं, कि अंग्रेज़ी राज में शिक्षा की नीतियों का निर्माण और फैलाव धीरे-धीरे हुआ किंतु 1813 से 1835 के बीच हुई घटनाओं ने मिशनरी व कम्पनी सरकार को शिक्षा के क्षेत्र में युरोपीय व एंग्लो-यूरोपियन समुदाय से निकलने का दरवाज़ा खोला। यहाँ यह भी सच है कि कम्पनी सरकार मैकॉले के दृष्टिकोण से पूरी तरह सहमत नहीं थी फिर भी उनके साम्राज्यवादी व औपनिवेशक हित स्पष्ट थे जिनके चलते उन्होंने अंग्रेज़ी व अंग्रेज़ी शिक्षा व यूरोपीय ज्ञान को बढ़ाया।

लब्बेलुआब यह है कि मैकॉले की टिप्पणियों ने उस समय के कई प्रचलित विचारों को एक सूत्र में बाँधा। इन विचारों का इंजन व प्रक्रिया-स्रोत अफ़सरशाही के साथ-साथ बाहरी ताक़तें, विचारधाराएँ व परिस्थितियाँ भी थीं। बड़ी बात यह है कि यह सब मात्र भारतीय महाद्वीप में ही नहीं अपितु अंग्रेज़ी साम्राज्य के अधीन दूसरी जगहों की संस्कृति तथा भाषाओं के साथ भी कुछ इसी तरह का घटित हुआ।

इस तरह यह क़िताब हमें मैकॉले की टिप्पणी को तत्कालीन अंग्रेज़ी साम्राज्य, उसके औपनिवेशिक संदर्भ तथा उससे संबंधित विभिन्न पहलुओं के माध्यम से समझने का आमंत्रण देती है। यह पुस्तक मैकॉले की टिप्पणी का अविकल पाठ प्रस्तुत करती है। साथ ही यह भारतीय शिक्षा के इतिहास को दुबारा से देखने का भी आग्रह करती है। यह पुस्तक छात्रों, अध्यापकों, शिक्षाविदों तथा नीति-निर्धारकों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

ग़ौरतलब है कि पुस्तक का अनुवाद तथा उसकी शैली प्रस्तुत सामग्री को निष्प्रभावी बना देती है। ज़्यादातर वाक्य अंग्रेज़ी की संरचना में लिखे गये हैं। अनुवादक तथा प्रकाशक दोनों को ही हिंदी भाषा और उसकी शैली के साथ न्याय करना चाहिए था। कई अध्याय बहुत बड़े हैं तथा कुछ बहुत छोटे। कुछ क़िताब की संरचना से मेल ही नहीं खाते। इन सब छोटी-छोटी चीज़ों पर ध्यान देने से पुस्तक और बेहतर तथा पठनीय बन सकती थी।

संदर्भ

धर्मपाल (2000), *इण्डियन साइंस ऐंड टेक्नॉलॅजी इन द एटींथ सेंचुरी : सम कंटेम्पररी युरोपियन एकाउंट्स (कलेक्टिड राइटिंग्ज़ ऑफ़ धर्मपाल-खण्ड 1)*, अदर इण्डिया प्रेस, गोवा.

सुदीप्त कविराज (2005), 'द सडन डेथ ऑफ़ संस्कृत नॉलेज', *जर्नल ऑफ़ इण्डियन फ़िलॉसफ़ी*, खण्ड 33.